Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
Volume-14, Issue-4, March-2021
www.researchguru.net

सूरदास और भारतीय कृषक संस्कृति

डॉ. तेजनारायण ओझा

(एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय, दि.वि.)

सार:

मध्यकाल (मूलत: भक्तिकाल) के कवियों ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया है। कृषक संस्कृति मानव जीवन का एक ऐसा पक्ष है जिससे जीवन का सार निर्मित होता है इसलिए संस्कृत साहित्य में कृषि संस्कृति से उत्पन्न होनेवाले अन्न को प्राण की संज्ञा दी। मुख्यत: रसवादी आचार्यों ने 'अन्नैव प्राण:' कहकर कृषक संस्कृति के महत्व को स्थापित किया अर्थात कृषि संस्कृति है तो अन्न है और अन्न है तो जीवन है। भक्तिकाव्य अपनी जनचेतना और निस्वार्थ भक्ति के लिए जाना जाता है। भक्ति काव्य में भक्ति के साथ-साथ अपने समय का यथार्थ भी नजर आता है। इस काल के कवि काव्य रचना के लिए एकांतवास नहीं करते थे। वे अपनी जीविका के लिए किसी न किसी रूप में कृषि व्यवसाय से जुड़े हुए थे। इसी परंपरा में तुलसी और सूर दोनों ने कृषक संस्कृति की विशद व्याख्या की। कृषक संस्कृति को अनुभव के धरातल पर महसूस करते हुए अपने काव्य रचना प्रक्रिया में मानो इस प्रकार से शामिल किया कि काव्य की संस्कृति और कृषक संस्कृति एक ही हो। 'काहे को घिघियात हौ कछु राम चार्चा करो' बल्लभाचार्य के इस उत्प्रेरण से सूर जब मुक्त हुए तब उन्होंने अपनी रचना यात्रा में कृषक संस्कृति को सर्वोपरि रखा और उसमें कृष्ण की बाल-लीला, कृष्ण का सौंदर्य, गौचारण, गौपालन संस्कृति तथा ग्वाल और गोपियों को पिरो दिया। कृष्ण को गोपाल कहा गया है यानी गायों के संरक्षक। इसलिए कृष्ण काव्य में गौचारण और गोधन पर लिखने का अवकाश ज्यादा है। सूरदास ने कृषि के केवल एक आयाम को अपनी कविता का विषय नही बनाया बल्कि उससे जुड़े हुए संरचनात्मक सूत्रों को भी शामिल किया, जैसे, कृषि है तो कृषक है, उससे जुड़ा हुआ उत्पादन है फिर उपभोग की व्यवस्था है और उसमें शामिल हुए सामंत हैं जो लगातार भारतीय समाज व्यवस्था को प्रभावित करते रहते हैं। सूरदास को इन सबकी गहरी पहचान है। कृषक संस्कृति का पावस ऋतु से घनिष्ठ संबंध है क्योंकि प्राचीन भारतीय कृषि व्यवस्था में सिंचाई के लिए समुचित प्रबंध न होने के कारण पावस ऋतु पर निर्भरता अधिक है। इसलिए सूरदास ने सूरसागर की रचना करते हुए पावस ऋतु की मार्मिक अभिव्यक्ति की है क्योंकि पावस ऋतु केवल ऋतु नहीं है, वह उद्दीपन विभाव भी है। उसके परिवर्तित होने से मनुष्य की चेतना भी परिवर्तित होती है। मानव सभ्यता के विकास में चरागाही संस्कृति और कृषक जीवन का संबंध बहुत गहरा है। इसका संबंध मिट्टी से है, प्रकृति से है, जीवन से है, आजीविका से है। इसी से यथार्थ नीर्मित होता है। साहित्य में यह यथार्थ सूक्ष्म रूप से गूँथे होते हैं और अपनी उपस्थिति से संस्कृति का एक आयाम रचते हैं।

की-वर्ड्स:

कृषक संस्कृति, कृषि जीवन, पशुचारण, गोचारण, गोधन, सामंतवादी व्यवस्था, सूदखोरी, पावस ऋतु।

परिचय:

जीवन और भोजन का नैसर्गिक संबंध है और इस भोजन के लिए मनुष्य कृषक बना। इतिहास में दर्ज है कि कृषक समाज के जन्म के साथ ही सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ। पशुपालन और व्यापार ने विस्तार ग्रहण किया। किसान ने प्रकृति को समझा, मौसम को समझा, मिट्टी को समझा, उसकी खूश्बू को समझा और इससे दोनों के बीच एक अटूट रिश्ता कायम हुआ और पीढी दर पीढी यह रिश्ता बना रहा। हिंदी साहित्य में निरंतर इसका संकेत मिलता रहा है। हिन्दी की आदिकालीन रचनाओं में कृषक जीवन की संवेदना दिखाई देती है जिसमें वही फिर

मध्यकालीन साहित्य विस्तृत रूप से दिखाई देता है। ख़ासकर भक्तिकाल में कृषि जीवन बहुत गंभीरता के साथ चित्रित हुआ है। इसके पीछे कारण यह रहा कि इस समय के अधिकांश कवि व्यवसाय और कृषि से जुड़े हुए थे। सूर के पदों में यह

संस्कृति पूर्णरूप से अनुभव और यथार्थ के स्तर पर दिखाई देती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसकी सूचना इस प्रकार दी कि -

'बाललीला के आगे फिर उस गोचारण का मनोरम दृश्य सामने आता है, जो मनुष्य जाति की अत्यंत प्राचीन वृत्ति होने के कारण अनेक देशों के काव्य का प्रिय विषय रहा है। यूनान के पशुचारण-काव्य का मधुर संस्कार यूरोप की कविता पर अब तक कुछ-न-कुछ चला ही आता है। कवियों को आकर्षित करनेवाली गोप-जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरने के लिए सबसे अधिक अवकाश। कृषि, वाणिज्य आदि और व्यवसाय जो आगे चलकर निकले, वे अधिक जटिल हुए - उनमें उतनी स्वच्छंदता न रही।' [1]

इस उद्धरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज के साथ कृषि जीवन से जुड़े अनेकानेक आयामों का विकास हुआ । सूरदास के वहां गोचारण की प्रथा का उल्लेख मिलता है। गोचारण की यही संस्कृति मध्यकालीन समाज में सामंती व्यवस्था में जकड़े मनुष्य को एक स्वच्छंद परिवेश प्रदान करने का कार्य करती है। अतः यह कहना असंगत नहीं है कि कृषि और गोचारण ने तमाम विसंगतियों से घिरे मनुष्य के लिए जीवनदायिनी ऊर्जा का काम किया। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने यह स्पष्ट संकेत किया कि सूरदास बाल-लीला और वात्सल्य भाव के बाद गोचारण और कृषि जीवन के कवि हैं। सोलहवीं शताब्दी का समय इसी प्रवृति की अभिव्यक्ति के साथ मूर्त हो उठता है।

कविता की एक ख़ासियत होती है कि उसमें जितना कल्पना का समावेश हो सकता है, उतना यथार्थ का भी। यह कवि के अनुभव क्षेत्र से जुड़ा होता है कि वह कितना काल्पनिक और यथार्थ है। सूरदास के काव्य में कल्पना कम और यथार्थ ज्यादा दिखता है। कृषक जीवन की चर्चा सूर ने जहां की है वहां इनका यथार्थ का अनुभव दिखाई देता है। कृषक जीवन और गोचारण खेती से संबद्ध है। इस पद में सूर ने खेती का विशद् विवेचन किया है -

प्रभु जू यौं कीन्हीं हम खेती
बंजर भूमि गाउं हर जोते, अरु जेती की तेजी ।
काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज तामस सब कीन्हौं ।
अति कुबुद्धि मन हांकनहारे, माया जूआ दीन्हौं ।
इन्द्रिय मूल किसान, महातृन अग्रज बीज बई ।
जन्म जन्म को विषय वासना, उपजत लता नई ।
कीजै कृपादृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई।
सूरदास के प्रभु सौं करियै, होई न कान-कपाई । [2]

इसमें सूरदास ने खेती करने की प्रविधि, साधन और आने वाली चुनौतियों का वर्णन किया है।

सूरदास ने सूक्ष्मता के साथ कृषि जीवन का चित्र अंकित किया है। जैसे वात्सल्य लीला उनका आत्मिक विषय है, ठीक वैसे ही कृषि जीवन भी। सूर ने कृषि जीवन से जुड़े किसी भी आयाम को छोड़ा नहीं। धरती की पहचान उजड़, बंजर और उपजाऊ के रूप में करते हुए पशुपालन पर भी अपना दृष्टि डाली -

माधो जू, यह मेरी इक गाई
अब आज मैं आप आगैं दई, लै आइयै चलाई ।
यह अति हरहाई, हटकत हूं बहुत अमारग जाति ।
फिरति वेग-वन-ऊख उखारति, सब दिन अरू सब राति ।
हित करि मिलै लेहु गोकुलपति, अपने गोधन मां । [3]

उपर्युक्त पदों में सूर ने गो-धन का संकेत दिया। पशुपालन से जुड़े हुए व्यक्ति को उसकी समझ

[1] आचार्य रामचंद्र शुक्ल-सूरदास, पृ.स. 160

[2] सूरदास - सूरसागर, भाग-1, पद सं. 185

[3] वही, पद सं. 51

होनी चाहिए। यहॉ पर हरही गाय के चित्रण के साथ गायों के रंग का भी विशद् विवेचन हुआ है।

अपनी-अपनी गाई गरवाल सब, आनि करौ इक ठौरी ।
धौरी, धूमरि, लाती, रौंदी, बोल बुलाइ चिन्हौरी ।
पियरी, मोरी, गोरी, गैनी, खैरी, कजरी, जेती ।
दुलही, फुलही, भौंरी, भूरी, हांकि ठिकाई तेती । [4]

इस पद में सूर ने जिस विविधता के साथ गायों के रंग और उनकी प्रकृति की चर्चा की है, उससे यह कहना उचित ही है कि सूर विस्तृत कृषि जीवन के कवि हैं।

कृषि जीवन पर विचार करने या उसे अपने अनुभव के केंद्र में रखना अनेक दृष्टियों से और भी महत्वपूर्ण इसलिए हो जाता है कि वह गहरे अर्थों में समाज के साथ जुड़ा होता है। सूरदास ने कृषि जीवन का जो खाका रेखांकन किया है, वह कई संदर्भों से जुडा दिखता है। उनका समय सामंती परिवेश का समय है जिसकी धमक कृषि जीवन पर स्पष्टतः दिखाई देती है -

अधिकारी जम लेखा मांगै, तातैं हौं आधीनौ ।
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारौ, जौन दिय मैं छूटौं /
धर्म जमानत मिल्यौ न चाहै, तातैं ठाकुर लूटौ ।
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही ।
लागे धरम, बतावै अधरम, बाकी सबै रही ।
सोई करौ जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउं ।
अपने नाम की बैरख बांधो, सुबस बसौं इहिं गाउं / [5]

सामंती व्यवस्था और सूदखोरी एक दूसरे के पर्याय थे। मध्यकालीन समय में पूरा समाज सामंतों और सूदखोरों के कुचक्र में फंसा हुआ था। सूर ने इसका भी चित्रण किया-

सबै क्रूर मोसों ऋण चाहत , कहौ कहा तिन दीजै /
बिना दियै दुख देत दयानिधि, कहौ कौन विधि कीजै । [6]

इस पद में सूरदास ने दिखाया है कि सूदखोरी और कर्ज लेने की व्यवस्था ने कृषि का नुक़सान ही किया।

सामंती व्यवस्था भारतीय समाज के लिए अभिशाप की तरह थी । सामंतों की चालबाजियों में फंसा हुआ समाज निरंतर अधोपतन की तरफ़ जा रहा था। सूरदास ने कृषि जीवन पर विचार करते हुए सामंती व्यवस्था के इस कुचक्र पर भी विचार किया। सामंती व्यवस्था से जुड़े हुए कारिंदो की सोच को प्रस्तुत किया-

मोहरिल पॉच साथ करि दीने, तिनकी बड़ी विपरीति /
जिम्मैं उनके, मांगे मोतै , यह तौ बड़ी अनीति
पॉच-पचीस साथ अगवानी, सब मिलि काज बिगारे /
सुनी तगीरी,, बिसरि गईं सुधि, मो तजि भए नियारे ।
बढ़ौ तुम्हार बरामद हूं कौ लिखि कीनौं है साफ
सूरदास की यहै बीनती दस्तक कीजै माफ । [7]

यहॉ जिस व्यवस्था का चित्रण किया गया है, बाद में चलकर प्रेमचंद ने गोदान में इन्हीं कुचक्रों का चित्रण किया और कहा कि आज इन परिस्थितियों से किसान मजदूर में बदलता जा रहा है। गोबर

[4] सूरदास - सूरसागर, भाग-1, पद सं. 1064
[5] वही, पद सं. 185
[6] वही, पद सं. 196
[7] सूरदास - सूरसागर, भाग-1, पद सं. 143

इसका प्रमाण है। सूर ने निःसंदेह ऐसा संकेत रूप में देखा होगा।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः सूर की कविता को पढते समय यह सहज ही अनुमाप्य है कि मानव जीवन और कृषि, दोनों की सत्ता लगभग एक ही है, दोनो एक दूसरे के सहवर्ती हैं, यानी कृषि है तो जीवन है और जीवन है तो कृषि का होना अनिवार्य है। सूरदास ने कृषि संस्कृति से जुडे किसी भी पक्ष को अछूता नहीं छोड़ा। कृषि उनकी कविता में उद्धरण के रूप में नहीं, अनुभव के रूप में आता है। कृष्ण काव्य के महाकवि सूरदास ने अपने पदों में गोधन और पशुपालन पर जो बात की है, उसका कोई सानी नहीं। सामंतवादी परिवेश में कृषक जीवन की विविध गतिविधियां और समसामयिक समस्या को सूरदास ने तन्मयता के साथ अभिव्यक्त किया है। सूर की कविता का प्रस्थान बिंदु कृषक संस्कृति ही है। उसी से वे रचनात्मक उर्जा प्राप्त करते हैं।

संदर्भ:

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल - सूरदास, पृ.स. 160, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, आवृत्ति 1981.

2. सूरदास - सूरसागर, भाग-1, पद सं. 185, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, आवृत्ति 1975

xxxxxx